# अथ षड्विंशोऽध्यायः

## वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह । हताः पुण्यजनैः सर्वा राक्षसैः सा कुशस्थली ॥ १ ॥
तद्वै भ्रातृशतं तस्य धार्मिकस्य महात्मनः । निबध्यमाना रक्षोभिर्दिशः संप्राद्रवन्भयात् ॥ २ ॥
तेषां तु ते भयाक्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र हि । अन्ववायस्तु सुमहान्महांस्तत्र द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥
प्रयता इति विख्याता दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः । धृष्टस्य धाष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ॥ ४ ॥
त्रिसाहस्रं तु सगणं क्षत्रियाणां महात्मनाम् । नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान् ॥ ५ ॥
अम्बरीषस्तु नाभागिर्विरूपस्तस्य चाऽऽत्मजः । पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतरः ॥ ६ ॥

---

# छब्बीसवाँ अध्याय

(अट्ठासीवाँ अध्याय)

## वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—महाराज रैवत के, जिनका दूसरा नाम ककुद्मी भी था, मेरु शिखर पर चले जाने के बाद सभी राक्षसों ने मिलकर समस्त कुशस्थली को विध्वस्त कर दिया । अत्यन्त धार्मिक एवं महात्मा उस राजा ककुद्मी के अन्य सौ भाई उन राक्षसों से अतिशय पीड़ित एवं भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये ॥ १-२ ॥

इस प्रकार उन राक्षसों से भयभीत क्षत्रियों के समूह इधर-उधर तितर-बितर हो गये । वहाँ पर भी कुछ वंशज गये जहाँ महान् प्रतापी राजा स्वयं निवास करता था । उस राजा के वे वंशज क्षत्रियगण सभी दिशाओं में धार्मिक विचारों वाले तथा इन्द्रियों को वश में रखनेवाले विख्यात थे । इसी वंश में उत्पन्न होने वाले धृष्ट के धाष्टक, क्षत्र, रणधृष्ट नामक पुत्र हुए ॥ ३-४ ॥

जो परम बलवान् तीन सहस्र क्षत्रियों के समूह में प्रमुख थे । दूसरे उसी वंश में उत्पन्न होने वाले नभग के उत्तराधिकारी परम बलवान् नाभाग नाम से प्रसिद्ध हुए । नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए, उन अम्बरीष के पुत्र विरूप हुए । विरूप के पुत्र पृषदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम रथीतर हुआ ॥ ५-६ ॥

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः । रथीतराणां प्रवराः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥ ७ ॥
क्षुवतस्तु मनोः पूर्वमिक्ष्वाकुरभिनिःसृतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥ ८ ॥
तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिर्दण्डश्च ते त्रयः । शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पञ्चाशतस्तु ते ॥ ९ ॥
उत्तरापथ देशस्य रक्षितारो महीक्षितः । चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च दक्षिणस्याञ्च ते दिशि ॥ १० ॥
विंशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिणः । इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथाऽऽदिशत् ॥ ११ ॥

राजोवाच

मांसमानय श्राद्धेयं मृगान्हत्वा महाबल । श्राद्धमद्य नु कर्तव्यमष्टकायां न संशयः ॥ १२ ॥
स गतस्तु मृगव्यां वै वचनात्तस्य धीमतः । मृगान्सहस्रशो हत्वा परिश्रान्तश्च वीर्यवान् ॥
भक्षयच्छशकं तत्र विकुक्षिर्मृगयां गतः ॥ १३ ॥
आगते स विकुक्षौ तु समांसे सहसैनिके । वसिष्ठश्चोदयामास मांसं प्रोक्षय मन्त्रतः ॥ १४ ॥
तथेति चोदितो राज्ञा विधिवत्समुपस्थितः । स दृष्ट्वोपहतं मांसं क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥ १५ ॥
शूद्रेणोपहतं मांसं पुत्रेण तव पार्थिव । शशभक्षादभोज्यं वै तव मांसं महाद्युते ॥ १६ ॥

---

ये उपर्युक्त राजागण क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए और अंगिरा के गोत्रज रूप में विख्यात हुए । रथीतर के वंश में उत्पन्न होने वालों के प्रवर क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों के हैं । प्राचीनकाल में मनु के छींकते समय इक्ष्वाकु नामक पुत्र उनके नाक से निकल पड़े थे । वे परम दानशील थे, उनके वंश में एक सौ पुत्र हुए ॥ ७-८ ॥

उन सभी पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ विकुक्षि नाम से प्रसिद्ध थे, उनके अतिरिक्त नेमि और दण्ड-को मिलाकर तीन पुत्र विख्यात थे, विकुक्षि के शकुनि प्रभृति पाँच सौ पुत्र हुए । वे सभी उत्तराखण्ड के देशों के स्वामी हुए । अड़तालीस दक्षिण में हुए । जिनमें बीस प्रमुख थे, वे दक्षिण दिशा के समस्त प्रदेशों की रक्षा में तत्पर रहने वाले थे । एक बार अष्टकातिथि के अवसर पर इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को आदेश दिया ॥ ९-११ ॥

राजा ने कहा—हे महाबलवान् ! मृगों को मारकर श्राद्ध करने योग्य मांस लाओ । आज अष्टकातिथि है, आज श्राद्ध करने का मेरा निश्चय है । परम बुद्धिमान् राजा इक्ष्वाकु की आज्ञा से विकुक्षि मृगों का शिकार करने के लिए वन को गये । यद्यपि विकुक्षि परम बलवान थे किन्तु वहाँ श्राद्ध के लिए सहस्रों मृगों का वध करने में हुए परिश्रम के कारण वह बहुत अधिक थक गये । मृगया करते समय उन्होंने थकान दूर करने के लिए वहीं पर एक खरगोश खा लिया ॥ १२-१३ ॥

सैनिकों के साथ मांस लेकर जब विकुक्षि राजधानी को वापस लौटे तब राजा ने महर्षि वसिष्ठ से 'मांस का मंत्रोच्चारणपूर्वक सिंचन संस्कार कर दीजिये'—ऐसा कहा । राजा के ऐसा कहने पर वसिष्ठ ने 'बहुत अच्छा' कहकर विधिपूर्वक सिंचन संस्कार करने के लिए जब वहाँ उपस्थित हुए तब उस समस्त मांस राशि को अपवित्र देखकर परम क्रुद्ध होकर राजा से बोले ॥ १४-१५ ॥

राजन् ! तुम्हारे इस नीच स्वभाववाले पुत्र विकुक्षि ने यह सब मांस अपवित्र कर दिया है । इसने पूर्व में ही खरगोश का मांस खा लिया है, अतः उसी के कारण यह सारा मांस अखाद्य हो गया है । हे निष्पाप ! इस

**शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ । तेन मांसमिदं दुष्टं पितॄणां नृपसत्तम ॥ १७ ॥**
**इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् । पितृकर्मणि निर्दिष्टो मया त्वं मृगयां गतः ॥**
**शशं भक्षयसेऽरण्ये निर्घृणः पूर्वमद्य नु ॥ १८ ॥**
**तस्मात्परित्यजामि त्वां गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा । एवमिक्ष्वाकुना त्यक्तो वशिष्ठवचनात्सुतः ॥ १९ ॥**
**इक्ष्वाकौ संस्थिते तस्मिञ्शशासं पृथिवीमिमाम् । प्राप्तः परमधर्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत् ॥ २० ॥**
**तदाऽकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदितः । ततस्तेनेनसा पूर्वो राज्यावस्था महीपतेः ॥ २१ ॥**
**कालेन गतवांस्तत्र स च न्यूनतरां गतिम् । ज्ञात्वैवमेतदाख्यानं नाविधिर्भक्षयेत्तु वै ॥ २२ ॥**
**मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्‌भ्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २३ ॥**
**शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् । इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायते पुरा ॥ २४ ॥**
**पूर्वमाडीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन स स्मृतः । अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरोमा च सः स्मृतः ॥ २५ ॥**
**वृषदश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्यवान् । आंध्रस्य यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ २६ ॥**
**जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता । श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ २७ ॥**

---

तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने वन में श्राद्ध के पूर्व ही एक खरगोश खा लिया है, हे नृपतिवर ! इसी कारण से यह सारा मांस दूषित हो गया, अब यह पितरों के योग्य नहीं रह गया है ॥ १६-१७ ॥

वसिष्ठ की इस प्रकार बातें सुनकर राजा इक्ष्वाकु अत्यन्त क्रुद्ध हुए और विकुक्षि से बोले—'मैंने तुम्हें पितृकर्म के योग्य मांस लाने की आज्ञा दी थी । उसी के लिए तुम शिकार करने गये भी थे । किन्तु वहाँ पर तुमने कुछ भी उचित-अनुचित का विचार न कर श्राद्ध के पहले ही निर्ममतापूर्वक एक खरगोश खा लिया ॥ १८ ॥

इस गुरु अपराध के कारण तुम्हें मैं त्याग रहा हूँ, अब तुम यहाँ से बाहर जहाँ मन कहे चले जाओ और अपने इस नीच कर्म का फल भोगो ।' वसिष्ठ के कहने पर इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को त्याग दिया । उस राजा इक्ष्वाकु के परलोक गमन के अनन्तर परम धर्मात्मा विकुक्षि ने महर्षि वसिष्ठ के बहुत कहने-सुनने पर अयोध्या का राज्य भार अपने ऊपर ले लिया और समस्त पृथ्वी मण्डल का शासन किया । किन्तु राज्य भार ले लेने पर वह राजा विकुक्षि अपने उस पूर्व पाप के कारण उत्तरोत्तर गिरता गया, उसकी महिमा उत्तरोत्तर क्षीण होती गयी । इस आख्यान को जानकर लोगों को चाहिए कि बिना विधान के मांस को न खायें ॥ १९-२२ ॥

बुद्धिमान् जन मांस के विषय में यह कहा करते हैं कि 'मैं इस लोक में जिसके मांस का भक्षण कर रहा हूँ वह परलोक में मेरे मांस का भक्षण करेगा यही मांस भक्षण का नियम है ।' शश भक्षण करनेवाले राजा विकुक्षि का उत्तराधिकारी परम बलवान् राजा ककुत्स्थ हुआ । प्राचीनकाल में इन्द्र के बैल का स्वरूप धारण करने पर यह राजा उनके ककुद (डील) पर सवार हुए थे, यह प्रसंग पूर्वकाल में होनेवाले आडीवक नामक युद्ध में घटित हुआ था, इसीलिए इसका नाम ककुत्स्थ पड़ा । ककुत्स्थ के पुत्र अनेना हुए, अनेना के पुत्र राजा पृथु हुए, पृथु के पुत्र वृषदश्व हुए, उनके परम बलशाली अन्ध्र नामक पुत्र हुआ । अन्ध्र के यवनाश्व नामक पुत्र हुआ, जिसके पुत्र का नाम श्रावस्त हुआ ॥ २३-२६ ॥

बृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इति श्रुतिः । यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २८ ॥

ऋषय ऊचुः

धुन्धुवधं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् । यदर्थं कुवलाश्वः स धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २९ ॥

सूत उवाच

बृहदश्वस्य पुत्राणां सहस्राण्येकविंशतिः । सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥ ३० ॥
बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः । कुवलाश्वं महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मिकम् ॥ ३१ ॥
बृहदश्वोऽभ्यषिञ्चत्तं तस्मिन्राष्ट्रे नराधिपः । पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह ॥ ३२ ॥
बृहदश्वं महाराज शूरमुत्तमधार्मिकम् । प्रयातं तमुत्तङ्कस्तु ब्रह्मर्षिः प्रत्यवारयत् ॥ ३३ ॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तत्तावत्कर्तुमर्हति । निरुद्विग्नस्तपः कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥ ३४ ॥
ममाश्रमसमीपेषु समेषु मरुधन्वसु । समुद्रो वालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति भूपते ॥ ३५ ॥
देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबलः । अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ॥ ३६ ॥
मनोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम सुदारुणः । शतं लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ ३७ ॥
संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं प्रमुञ्चति । यदा तदा मही तत्र चलति स्म सकानना ॥ ३८ ॥

---

बाद में उसी राजा श्रावस्त ने श्रावस्ती नामक पुरी का निर्माण किया था । राजा श्रावस्त के पुत्र महान् यशस्वी राजा बृहदश्व हुए । बृहदश्व के पुत्र का नाम कुवलाश्व सुना जाता है । राजा कुवलाश्व धुन्धु के मारने के कारण धुन्धुमार नाम से विख्यात हुए ॥ २७-२८ ॥

ऋषियों ने कहा—हे परम बुद्धिमान् सूत जी ! धुन्धु के वध का वृत्तान्त हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिस कारणवश राजा कुवलाश्व को धुन्धुमार की उपाधि मिली ॥ २९ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द । राजा बृहदश्व के पुत्रों की संख्या इक्कीस सहस्र थी, वे सब-के-सब सभी विद्याओं में पारङ्गत, परम बलवान्, दुर्दमनीय, प्रचुरदक्षिणा देने वाले, यज्ञकर्त्ता एवं धार्मिक विचारों वाले थे । नराधिप बृहदश्व ने सबों में परम धार्मिक, शूरवीर एवं साहसी कुवलाश्व को अपने राज्य के उत्तराधिकारी पद पर अभिषिक्त किया और इस प्रकार योग्य पुत्र को राज्य भी समर्पित कर स्वयं वन को चले गये । ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने परम धार्मिक महाराज बृहदश्व को वन में जाते हुए निवारित किया ॥ ३०-३३ ॥

उत्तङ्क ने कहा—हे राजन् ! आपको हम लोगों की रक्षा करनी चाहिए, अतः हमारी रक्षा कीजिये । उद्विग्न चित्त होने के कारण तपस्या करने में हम असमर्थ हो रहे हैं । भूपते ! हमारे आश्रम के समीप ही इस समान मरुभूमि में बालू का समुद्र है । उसी में भूमि के अन्दर निवास बनाकर परम विकराल शरीरवाला, महाबलवान् धुन्धु रहता है, देवगण भी उस धुन्धु का वध नहीं कर सकते, वह बालू में रहता है । वह धुन्धु मनु का पुत्र है, फिर भी परम क्रूर और दारुण चित्तवृत्तिवाला है । लोकों का विनाश करने के लिए वह सौ वर्षों से दारुण तप कर रहा है ॥ ३४-३७ ॥

तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् । आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥ ३९ ॥
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं सधूममतिदारुणम् । तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन्स्थातुं स्व आश्रमे ॥ ४० ॥
तं वारय महाबाहो लोकानां हितकाम्यया । तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाऽऽप्याययिष्यति ॥ ४१ ॥
लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन्विनिहतेऽसुरे । त्वं हि तस्य वधायाद्य समर्थः पृथवीपते ॥ ४२ ॥
विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्वं ततोऽनघ । न हि धुन्धुर्महावीर्यस्तेजसाऽल्पेन शक्यते ॥ ४३ ॥
निर्दग्धुं पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह । वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासहम् ॥ ४४ ॥
एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना । कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मिन्धुन्धुनिवारणे ॥ ४५ ॥
राजा संन्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥ ४६ ॥
स तं व्यादिश्य तनयं धुन्धुमारणमुद्यतम् । जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः ॥ ४७ ॥
कुवलाश्वस्तु धर्मात्मा पितुर्वचनमास्थितः । सहस्रैरेकविंशत्या पुत्राणां सह पार्थिवः ॥
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥ ४८ ॥
तमाविशत्ततो विष्णुर्भगवान्स्वेन तेजसा । उत्तङ्कस्य नियोगात्तु लोकानां हितकाम्यया ॥ ४९ ॥

---

एक वर्ष बीतने पर वह एक श्वास छोड़ता है, जिस समय वह श्वास छोड़ता है, उस समय जंगलों समेत सारी पृथ्वी हिलने लगती है । उसकी निःश्वास वायु से धूल का विकराल बवंडर उठ पड़ता है, जिससे सूर्य का मार्ग ही घिर जाता है, सात दिनों तक भूमि काँपती रहती है । चारों ओर अग्नि की चिनगारियाँ उठ पड़ती हैं, विकराल ज्वालाएँ निकलने लगती हैं । अतिदारुण धुएँ में सारी दिशाएँ आकीर्ण हो जाती हैं, हे राजन् ! इन सब उत्पातों से हम अपने इस आश्रम में भी निवास नहीं कर पाते हैं ॥ ३८-४० ॥

हे महाबाहु राजन् ! लोकरक्षा का ध्यान करते हुए उसे उत्पात से निवारित कीजिये । तुम्हारे इस उपकार कार्य में भगवान् विष्णु अपने तेजोबल से तुम्हारी सन्तुष्टि करेंगे अर्थात् सहायता करेंगे । उस महान् असुर के मारे जाने पर सभी लोक स्वस्थ हो जायेंगे । हे पृथ्वीपति ! आप उस महान् असुर के मारने में आज समर्थ हो । हे निष्पाप ! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने यह वरदान दिया है कि महाबलवान् धुन्धु अल्प बल से अधीन नहीं किया जा सकता है । अर्थात् इसे वश में करने के लिए किसी महान् बलशाली की आवश्यकता है । हे पृथ्वीपाल ! सैकड़ों वर्षों में भी उसे कोई पराजित नहीं कर सकता । उसका बल महान् है, देवगण भी उसे पराजित नहीं कर सकते ॥ ४१-४४ ॥

महात्मा उत्तङ्क के इस प्रकार कहने पर राजर्षि बृहदश्व ने घुन्धु के उपद्रवों को निर्मूल करने के लिए उन्हें अपने पुत्र कुवलाश्व को समर्पित करते हुए कहा—हे महर्षे ! मैं राजा हूँ, सभी का पालन करना हमारा धर्म है; परन्तु हम अस्त्र-शस्त्र छोड़ चुके हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! यह हमारा पुत्र निस्सन्देह उस धुन्धु को मारने में समर्थ होगा । इस प्रकार धुन्धु को मारने के लिए सत्यप्रतिज्ञ राजा बृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को नियुक्तकर स्वयं तपस्या के लिए पर्वत की ओर प्रस्थान किया । इधर पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर धर्मात्मा महाराज कुवलाश्व ने अपने इक्कीस सहस्र पुत्रों को तथा महर्षि उत्तङ्क को साथ लेकर उस धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया ॥ ४५-४८ ॥

तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् । अद्यप्रभृत्येष नृपो धुन्धुमारो भविष्यति ॥ ५० ॥
दिव्यैः पुष्पैश्च तं देवाः सममंसत अद्भुतम् । स गत्वा पुरुषव्याघ्रस्तनयैः सह वीर्यवान् ॥ ५१ ॥
समुद्रं खनयामास बालुकार्णवमव्ययम् । नारायणेन राजर्षिस्तेजसाऽऽप्यायितो हि सः ॥ ५२ ॥
बभूवातिबलो भूय उत्तङ्कस्य वशे स्थितः । तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकान्तर्हितस्तदा ॥ ५३ ॥
धुन्धुरासादितस्तत्र दिशामाश्रित्य पश्चिमाम् । मुखजेनाग्निना क्रुद्धो लोकानुद्वर्तयन्निव ॥ ५४ ॥
वारि सुस्राव योगेन महोदधिरिवोदये । सोमस्य सोमपश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलो महान् ॥ ५५ ॥
तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिरूनास्तु राक्षसाः । ततः स राजाऽतिबलो धुन्धुबन्धुनिबर्हणः ॥ ५६ ॥
तस्य वारिमयं वेगमपिबत् स नराधिपः । योगी योगेन वह्निं वा शमयामास वारिणा ॥ ५७ ॥
निरस्यत् तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् । उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥ ५८ ॥
उत्तङ्कश्च वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने । अदात्तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् ॥ ५९ ॥

---

महर्षि उत्तङ्क के प्रयत्नपूर्वक प्रार्थना आदि करने के कारण तथा लोकहित की भावना से भगवान् विष्णु स्वयं उस राजर्षि कुवलाश्व में अपने तेज सहित आविष्ट हुए । इस प्रकार, राजर्षि कुवलाश्व ने जिस समय धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया उस समय आकाश में चारों ओर से घोर शब्द होने लगे और चारों ओर से यह आवाज आने लगी कि आज यह राजा कुवलाश्व अवश्यमेव धुन्धु का संहार करेगा ॥ ४९-५० ॥

देवतागण चारों ओर से स्वर्गीय पुष्पों की वृष्टि उसके ऊपर करने लगे । इस प्रकार अपने पुत्रों समेत प्रस्थान कर परम बलशाली नरव्याघ्र कुवलाश्व ने उस बालुकामय समुद्र को जिसका विनाश असम्भव था, खनना प्रारम्भ किया । उस समय वह राजर्षि भगवान् के तेज से समन्वित होकर महान् बलवान् हो गये थे, फिर भी महर्षि उत्तङ्क के वश में वर्तमान थे ॥ ५१-५३ ॥

उस समय जबकि उनके पुत्रगण उस बालुकामय समुद्र को खन रहे थे धुन्धु इधर पश्चिम दिशा की ओर दिखायी पड़ा । उस समय वह बहुत क्रोधित हो रहा था, मुख से अग्नि की विकराल ज्वालाएँ इस प्रकार उगल रहा था मानो समस्त लोकों को विनष्ट कर देना चाहता हो । फिर उसने योगबल का आश्रय लेकर इतना जल बरसाया कि चारों ओर जल का भीषण समुद्र उमड़ पड़ा ॥ ५४-५५ ॥

हे सोमपान करनेवाले ऋषियों में सर्वोपरि ! उस समय वह जलराशि एवं तरंगें इस प्रकार ऊपर की ओर उमड़ने लगीं मानो चन्द्रमा का उदय हो गया हो । इस प्रकार राक्षसों ने राजा के समस्त पुत्रों को, केवल तीन पुत्रों को छोड़कर, भस्म कर दिया । तब धुन्धु के परिवार वर्ग को नष्ट करने की चिन्ता से उस महाबलवान् राजा ने धुन्धु की उस समस्त जलराशि का पान कर लिया, और योगबल द्वारा जल से इस अग्नि को भी शान्त कर दिया और उस प्रकार अपने अदम्य साहस से उस महाबलवान् जलवासी राक्षस धुन्धु को निरस्त कर दिया ॥५६-५८ ॥

अपने कार्य में सफलता प्राप्तकर राजा महर्षि उत्तङ्क के समीप उपस्थित हुए । महर्षि ने उस महात्मा राजा को उत्तम वरदान दिये । उसे कभी नष्ट न होनेवाली अक्षय सम्पत्ति प्रदान की, शत्रुओं से उसे कभी पराजय न मिले, धर्म में प्रेम भावना की वृद्धि हो, स्वर्गलोक में निरन्तर वास हो वहाँ से कभी पतन न हो ऐसा वरदान दिया ।

**धर्मे रतिं च सततं स्वर्गे वासं तथाऽक्षयम् । पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान्स्वर्गे ये राक्षसा हताः ॥ ६० ॥**
**तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते । भद्राश्वः कपिलाश्वश्च कनीयांसौ तु तौ स्मृतौ ॥ ६१ ॥**
**धौन्धुमारिदृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः । हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ ६२ ॥**
**संहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविशारदः । कृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ॥ ६३ ॥**
**तस्य पत्नी हैमवती सतां मतिदृषद्वती । विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ॥ ६४ ॥**
**युवनाश्वः सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिद्युतिः । अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥ ६५ ॥**
**अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता । तस्यास्तु गौरिकः पुत्रश्चक्रवर्ती बभूव ह ॥ ६६ ॥**
**मांधाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृपः। अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजाः ॥ ६७ ॥**
**यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ६८ ॥**
**अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं वंशविदो जनाः । यौवनाश्वं महात्मानं यज्वानममितौजसम् ॥**
**मांधाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥ ६९ ॥**
**तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् । साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिभा भुवि ॥ ७० ॥**
**पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा । तस्यामुत्पादयामास मांधाता त्रीन्सुतान्प्रभुः ॥ ७१ ॥**

---

इसके अतिरिक्त राक्षसों द्वारा उनके जिन पुत्रों का निधन हुआ था, उन्हें अक्षय स्वर्ग प्रदान किया ॥ ५९-६० ॥

उस राजा कुवलाश्व के जो तीन पुत्र शेष रह गये थे, उनमें सबसे बड़े का नाम दृढाश्व कहा जाता है । भद्राश्व और कपिलाश्व—ये दो छोटे कहे जाते हैं । धुन्धुमार के ज्येष्ठ पुत्र दृढाश्व का जो पुत्र हुआ उसका नाम हर्यश्व था । हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सर्वदा क्षत्रिय धर्म में निरत रहने वाला था ॥ ६१-६२ ॥

निकुम्भ का पुत्र संहताश्व रणभूमि में परम निपुण सुना जाता है । उसके कृशाश्व और अक्षयाश्व नामक दो पुत्र हुए । संहताश्व की एक पत्नी का नाम हेमवती था, जो सत्पुरुषों से सम्माननीय थी, उसका दूसरा नाम मतिदृषद्वती था, तीनों लोकों में वह परम विख्यात थी, उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ ॥ ६३-६४ ॥

प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व तीनों लोकों में परम कान्तिमान् था । उसके विचार परम धार्मिक थे, उसकी पतिव्रता पत्नी गौरी थी । पति ने एक बार उसे शाप दे दिया, जिसके फलस्वरूप वह बाहुदा नामक नदी के रूप में परिणत हुई । उसका पुत्र गौरिक अपने समय का चक्रवर्ती राजा हुआ । युवनाश्व का पुत्र मान्धाता त्रैलोक्य विजयी राजा था, उसके विषय में पुरानी कथाओं के जाननेवाले विप्रगण ये दो श्लोक बताते हैं, जिनका तात्पर्य यह है—जहाँ से सूर्य उदित होते हैं और जहाँ पर जाकर अस्त होते हैं, वह सब मान्धाता का राज्य कहा जाता है । इस प्रसंग में राजवंश के जाननेवाले लोग परम तेजस्वी, यज्ञपरायण महात्मा मान्धाता के विषय में यहाँ तक कहते हैं—पुराणज्ञ विद्वान् मान्धाता को भगवान् विष्णु का स्वरूप कहते हैं ॥ ६५-६९ ॥

उस राजा मान्धाता की स्त्री शशबिन्दु की पुत्री चैत्ररथी थी । वह समस्त पृथ्वी में अपने रूप में अनुपम थी । उस श्रेष्ठ पतिव्रता का अन्य नाम बिन्दुमती भी था । अपने दस सहस्र भाइयों में वह सबसे ज्येष्ठ थी, उसका पतिव्रता धर्म प्रशंसनीय था । ऐश्वर्यशाली मान्धाता ने उससे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम

पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च विश्रुतम् । अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ॥ ७२ ॥
हरितो युवनाश्वस्य हारिताः शूरयः स्मृताः । एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥ ७३ ॥
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः । नर्मदायां समुत्पन्नः संभूतस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ ७४ ॥
संभूतस्याऽऽत्मजः पुत्रो ह्यनरण्यः प्रतापवान् । रावणे न हतो येन त्रिलोकीविजये पुरा ॥ ७५ ॥
त्रसदश्वोऽनरण्यश्य हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः । हर्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमतो नृपः ॥ ७६ ॥
तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्मिकः । आसीत्त्रैधन्वनश्चापि विद्वांस्त्रय्यांरुणः प्रभुः ॥ ७७ ॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमासेऽभून्महाबलः । तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वा दिवौकसान् ॥ ७८ ॥
पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठां संप्रापितेष्विह । विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य विष्णुवृद्धो यतः स्मृतः ॥
एते ह्यङ्गिरस पुत्राः क्षात्रोपेताः समाश्रिताः ॥ ७९ ॥
कामाद्बलाच्च मोहाच्च संकर्षणबलेन च । भाविनोऽर्थस्य च बलात्तत्कृतं तेन धीमता ॥ ८० ॥
तमधर्मेण सयुक्तं पिता त्रयीगुणोऽत्यजत् । अपध्वंसेति बहुशोऽवदत्क्रोधसमन्वितः ॥ ८१ ॥
पितरं सोऽब्रवीदेकः क्व गच्छामीति वै मुहुः । पिता चैनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥ ८२ ॥

---

पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द कहे जाते हैं । राजा अम्बरीष का पुत्र दूसरा युवनाश्व हुआ ॥ ७०-७२ ॥

युवनाश्व के पुत्र हरित हुए, हरित के पुत्र शूरि नाम से प्रसिद्ध हुए । ये महर्षि अंगिरा के पुत्र क्षत्रिय धर्मपरायण द्विजाति कहे जाते थे । राजा पुरुकुत्स के उत्तराधिकारी महान् यशस्वी त्रसदस्यु हुए, जिनका जन्म नर्मदा में हुआ था, त्रसदस्यु के पुत्र सम्भूत हुए ॥ ७३-७४ ॥

सम्भूत के पुत्र परम प्रतापशाली अनरण्य हुए । जिन्होंने प्राचीनकाल में त्रिलोकी विजय के प्रसठ में रावण का निधन किया था । उन राजा अनरण्य के पुत्र त्रसदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम हर्यश्व था, उन राजा हर्यश्व से दृषद्वती में राजा वसुमत का जन्म हुआ । राजा वसुमत के पुत्र परम धार्मिक राजा त्रिधन्वा उत्पन्न हुए, राजा त्रिधन्वा के पुत्र परम विद्वान् एवं प्रभावशाली राजा त्रय्यारुण हुए ॥ ७५-७७ ॥

त्रय्यारुण के पुत्र सत्यव्रत हुए जो महाबलवान् थे । उन्होंने विदर्भ राजा की स्त्री को, विवाह के मंत्रों के उच्चारण करते समय, जब सारी क्रियाएँ समाप्त हो गयी थीं, उस समय समस्त देवताओं को पराजित कर, हरण कर लिया था ॥ ७८ ॥

उस परम बलवान् राजा के पुत्र विष्णुवृद्ध हुए, जिनसे उत्पन्न होनेवाले वंश के लोग विष्णुवृद्ध नाम से विख्यात हुए । अंगिरा के ये पुत्रगण भी क्षत्रिय मिश्रित द्विजाति वर्ण के हैं ॥ ७९ ॥

परम बुद्धिमान् सत्यव्रत ने अपनी इच्छा से, बल से अथवा बलवान् भावी (नियति) के वश होकर बलपूर्वक उक्त दुराचरण किया था, उसके इस अधर्माचरण से असन्तुष्ट होकर पिता त्रय्यारुण ने उसका परित्याग कर दिया और अति क्रुद्ध होकर उससे कहा कि 'तुम हमारे घर से बाहर निकल जाओ' ॥ ८०-८१ ॥

अपने पिता के एकमात्र पुत्र सत्यव्रत ने जब पिता से बारम्बार पूछा कि 'मैं कहाँ जाऊँ ?' तब पिता ने कहा कि 'चाण्डालों के साथ जाकर निवास कर, हे कुल में कलंक लगाने वाले ! तुम्हारे जैसे नालायक पुत्र से मैं

नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाऽद्य कुलपांसन । इत्युक्तः निराक्रामन्नगराद्वचनाद्विभो ॥ ८३ ॥
न चैनं धारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः । स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिकम् ॥
पित्रा मुक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वनं ययौ ॥ ८४ ॥
तस्मिंस्तु विषये तस्य नावर्षत्पाकशासनः । समा द्वादश संपूर्णास्तेनाधर्मेण वै तदा ॥ ८५ ॥
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः । संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥ ८६ ॥
तस्य पत्नी बले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् । शिष्टानां भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥ ८७ ॥
तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीतं तं नरोत्तमः । महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास सुव्रतः ॥ ८८ ॥
सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरणं तस्य चाकरोत् । विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥ ८९ ॥
सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपाः । महर्षिः कौशिकस्तातस्तेन वीर्येण मोक्षितः ॥ ९० ॥
तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया । विश्वामित्रकलत्रं च बभार विनये स्थितः ॥ ९१ ॥
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् । विश्वामित्राश्रमाभ्यासे तन्मांसमपचत्ततः ॥ ९२ ॥
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् । पितुर्नियोगादभजन्नृपे तु वनमास्थिते ॥ ९३ ॥
अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः । याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः परिरक्षितः ॥ ९४ ॥

---

पुत्रवान् नहीं होना चाहता ।' हे परम प्रतापशाली ! पिता के इस प्रकार निरादरपूर्ण वचन कहे जाने पर सत्यव्रत नगर से बाहर निकल गये ॥ ८२-८३ ॥

उस समय परम प्रभावशाली महर्षि वसिष्ठ ने भी उन्हें घर रहने के लिए नहीं रोका । इधर परम बुद्धिमान् एवं वीर सत्यव्रत पिता के परित्याग कर देने पर चाण्डालों की बस्ती के समीप जाकर बस गये और उधर उनके पिता वन को चले गये ॥ ८४ ॥

इस अधर्म से उस प्रान्त में इन्द्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की । उसी प्रदेश में महातपस्वी विश्वामित्र अपने स्त्री-पुत्रों को निराधार छोड़कर सागर के तटवर्ती प्रान्त में घोर तप कर रहे थे, उनकी पत्नी ने अपने मँझले पुत्र को गले में बाँधकर शेष पुत्रों के भरण-पोषण के लिए सौ गौओं के बदले बेच दिया था । व्रतपरायण, धर्मात्मा नरपति सत्यव्रत ने महर्षिपुत्र विश्वामित्र के मंझले पुत्र को इस प्रकार गले में बँधा और विक्रीत देखकर उस संकट से छुड़ाया ॥ ८५-८८ ॥

इसके बाद उस महाबुद्धिमान् नरपति ने महर्षि विश्वामित्र को सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिए उनके पुत्र का पालन-पोषण किया । गले में बंधने के कारण विश्वामित्र के उस महातपस्वी पुत्र का नाम गालव पड़ा । इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का पुत्र उस बलवान् राजा के द्वारा बचाया गया । उसने अपनी व्रतपरायणताएवं भक्ति, कृपा, सत्यप्रतिज्ञा तथा विनयपूर्वक विश्वामित्र की स्त्री का भरण-पोषण किया । विश्वामित्र के आश्रम के समीप मृगों, शूकरों, महिषों एवं अन्यान्य वन्य जन्तुओं को मारकर उनके मांस को वह पकाता था ॥ ८९-९२ ॥

फिर मौनव्रत धारणकर पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में चाण्डालों के समीप रहकर दीक्षा ग्रहणकर निवास करता रहा । इधर पिता-पुत्र दोनों की अनुपस्थिति में महर्षि वसिष्ठ पुरोहितों एवं उपाध्यायों के सहयोग से राजधानी अयोध्या, राज्य एवं अन्तःपुर की रक्षा करते रहे ॥ ९४ ॥

**सत्यव्रतस्तु बाल्यात्तु भाविनोऽर्थस्य वै बलात् । वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास मन्युना ॥ ९५ ॥**
**पित्रा रुदंस्तदा राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम् । न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन वै ॥ ९६ ॥**
**पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे । एवं सत्यव्रतस्तान् वै हृतवान् सप्तमे पदे ॥ ९७ ॥**
**जानन्धर्मान्वसिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति । इति सत्यव्रते रोषं वसिष्ठो मनसाऽकरोत् ॥ ९८ ॥**
**गुरुबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्तदा । न तु सत्यव्रतो बुद्ध्या उपांशुव्रतमस्य वै ॥ ९९ ॥**
**तस्मिंश्चोपरते यो यत्पितुरासीन्महामनाः । तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः ॥ १०० ॥**
**तेन त्विदानीं बहुधा दीक्षां तां दुर्बलां भुवि । कुलस्य निष्कृतिः स्वस्य कृतेयं च भवेदिति ॥ १०१ ॥**
**ततो वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् । अभिषेक्ष्याम्यहं राज्ये पश्चादेनमिति प्रभुः ॥ १०२ ॥**
**स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहन् बली । अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ १०३ ॥**
**सर्वकामदुघां धेनुं संददर्श नृपात्मजः । तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥ १०४ ॥**
**दस्युधर्मं गतो दृष्ट्वा जघान बलिनां वरः। स तु मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चाऽऽत्मजान् ॥ १०५ ॥**

---

कुमार सत्यव्रत अपने बाल्य स्वभाव के कारण तथा भावीवश महर्षि वसिष्ठ के ऊपर बहुत अधिक क्रुद्ध थे । क्योंकि पिता द्वारा घर से निकाले जाते समय जब वे रोते हुए राष्ट्र से बाहर निकल रहे थे तब महर्षि वसिष्ठ ने किसी कारण से उन्हें निवारित नहीं किया ॥ ९६ ॥

पाणिग्रह अर्थात् विवाह संस्कार के मन्त्रों की समाप्ति सातवें चरण में होती है (सप्तपदी के होने के बाद विवाह संस्कार सम्पन होता है) किन्तु उसी सप्तपदी के समाप्त होने के अवसर पर उस विदर्भ राजा की स्त्री को सत्यव्रत ने बलपूर्वक छीन लिया था । महर्षि वसिष्ठ धर्म की मर्यादा को जाननेवाले थे, अतः उन्होंने सत्यव्रत के उक्त कार्य का अनुमोदन नहीं किया, और मन्त्रों की मर्यादा भ्रष्ट होने के भय से कुमार सत्यव्रत के ऊपर उन्होंने मन से क्रोध किया ॥ ९७-९८ ॥

महर्षि वसिष्ठ ने गुरु की मर्यादा रक्षा के ध्यान से सत्यव्रत के ऊपर वह कोप किया था । अतः कुमार सत्यव्रत उनके इस मौनाबलम्बन का जो नगर से निकालते समय उन्होंने अपनाया था, तात्पर्य नहीं जान सके । महामनस्वी वसिष्ठ जी ने सोचा कि पिता की मृत्यु हो जाने के बाद इन्द्र ने बारह वर्षों तक अराजकता से अधर्म बढ़ जाने के कारण वर्षा नहीं की । इसलिए सत्यव्रत भी पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में दीक्षा ग्रहण कर निवास करते रहे । पृथ्वी पर लोगों की जीविका कष्टसाध्य हो गयी है, अतः सत्यव्रत के आ जाने से उसके वंश का विस्तार तो हो ही जायगा ॥ ९९-१०१ ॥

ऐसा विचारकर महर्षि वसिष्ठ ने उस समय पिता द्वारा निष्कासित किये गये सत्यव्रत को पूर्व पाप से निवारित किया, और कहा कि तुम्हें राज्य पद पर अभिषिक्त कर रहा हूँ । उधर बलवान् राजकुमार सत्यव्रत पिता की आज्ञा से बारह वर्ष का व्रत लेकर जिस समय वन में निवास कर रहा था, उस समय एक दिन मांस का अभाव हो गया, तब उसने महात्मा वसिष्ठ की सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली कामधेनु को देखा ॥ १०२-१०३ ॥

क्रोध, मोह, क्षुधा एवं अत्यन्त थके-माँद होने के कारण, उसने विचार किया कि मैं इन चाण्डालों के समीप निवास करता हूँ, उन्हीं के समान आचरण भी मुझे करना चाहिए, क्यों न इसी को मारकर क्षुधा शान्त

भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्तं तदाऽत्यजत् । प्रोवाच चैव भगवान्वसिष्ठस्तं नृपात्मजम् ॥ १०६ ॥
पातये क्रूर हे क्रूर तव शंकुमयोमयम् । यदि ते त्रीणि शंकूनि न स्युर्हि पुरुषाधम ॥ १०७ ॥
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च । अप्रोषितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ १०८ ॥
एवं स त्रीणि शंकूनि दृष्ट्वा तस्य महातपाः । त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन स स्मृतः ॥ १०९ ॥
विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते । ततस्तस्मै वरं प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥ ११० ॥
छन्द्यमानो वरेणाथ गुरुं वव्रे नृपात्मजः । अनावृष्टिभये तस्मिन्गते द्वादशवार्षिके ॥ १११ ॥
अभिषिच्य राज्ये पित्र्ये याजयामास तं मुनिः । मिषतां दैवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ॥
सशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयत्प्रभुः ॥ ११२ ॥
मिषतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत् । अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका जनाः ॥ ११३ ॥
विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशङ्कुर्दिवि राजते । देवैः सार्धं महातेजाऽनुग्रहात्तस्य धीमतः ॥ ११४ ॥
शनैर्यात्यबला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता । अलंकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशङ्कुग्रहभूषिता ॥ ११५ ॥

---

करूँ। यह सोचकर उसने वसिष्ठ की उस कामधेनु को मार डाला। महाबलवान् राजकुमार सत्यव्रत ने इस प्रकार उस कामधेनु के मांस को स्वयं खाया और महर्षि के पुत्रादिकों को भी खिलाया। इस दारुण वृत्तान्त को सुनकर परम तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने कुमार सत्यव्रत को राज्यकर्म से छोड़ दिया और उससे कहा, हे क्रूरकर्मा ! अब हम तुम्हें नीचे गिरा रहे हैं, हे पुरुषाधम ! यदि तुम्हारे ये तीन शंकु (महापाप रूप कौल) न होते तो तुम्हारे ऊपर लोह का शंकु गिरता। पिता के असन्तुष्ट करने के कारण, गुरु की कामधेनु की हत्या करने के कारण, बिना संस्कार आदि किये मांस भक्षण करने के कारण तुमने तीन धार्मिक अपराध किये हैं ॥ १०४-१०८ ॥

महातपस्वी महर्षि वसिष्ठ ने सत्यव्रत के इन तीन शंकु सदृश महान् अपराधों का विचारकर उसका त्रिशंकु नाम रख दिया, इसी कारण उसका त्रिशंकु नाम भी पड़ गया ॥ १०९ ॥

इधर राजर्षि विश्वामित्र जब तपस्या से निवृत्त होकर आश्रम को लौटे और स्त्री-पुत्रादिकों के सत्यव्रत द्वारा भरण-पोषण किये जाने का वृत्तान्त सुना तो परम प्रसन्न होकर त्रिशंकु को वरदान दिया ॥ ११० ॥

विश्वामित्र के वरदान देते समय राजकुमार सत्यव्रत ने सारा शाप वृत्तान्त निवेदन किया। कौशिक ने उस बारह वर्ष के अनावृष्टिजनित दुष्काल के बीत जाने पर सत्यव्रत को राज्यपद पर अभिषिक्त किया, और उसके द्वारा यज्ञादि शुभ कार्य सम्पन्न कराया और उन त्रिशङ्कु को विश्वामित्र ने सशरीर स्वर्ग में भेज दिया। सभी देवगण तथा महर्षि वसिष्ठ देखते ही रह गये ॥ १११-११२ ॥

महर्षि वसिष्ठ उनके इस अद्भुत कार्य को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। पौराणिक लोग इस विषय में इन दो श्लोकों को उपस्थित करते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है ॥ ११३ ॥

महामुनि विश्वामित्र की कृपा से त्रिशंकु स्वर्ग में विराजमान है, उस परम बुद्धिमान् की कृपा से वह तेजस्वी होकर देवताओं के साथ शोभा पाता है, त्रिशंकु रूप ग्रह के आकर्षण से विभूषित होकर, तीन प्रकार के भावों से अलंकृत है ॥ ११४-११५ ॥

तस्य सत्यरता नाम भार्या केकयवंशजा । कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ ११६ ॥
स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुतः । आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुतः ॥ ११७ ॥
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्यवान् । हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ॥ ११८ ॥
राजा विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः । जेता सर्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृतः॥ ११९ ॥
रुरुकस्तनयस्तत्र राजा धर्मार्थकोविदः । रुरुकाद्भुतकः पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान् ॥ १२० ॥
हैहयैस्तालजङ्घैश्च निरस्तो व्यसनी नृपः । शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पल्हवैस्तथा ॥ १२१ ॥
नात्यर्थं धार्मिकोऽभूत्स धर्म्ये सत्ययुगे तथा । सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ॥
भृगोराश्रममासाद्य तुर्वेण परिरक्षितः ॥ १२२ ॥
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा तु भार्गवात्सगरो नृपः । जघान पृथिवीं गत्वा तालजङ्घान्सहैहयान् ॥ १२३ ॥
शकानां पल्हवानां च धर्मान्निरसदच्युतः । क्षत्रियाणां तथा तेषां पारदानां च धर्मवित् ॥ १२४ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् । किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम्॥
धर्मान् कुलोचितान् क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः ॥ १२५ ॥

---

हेमन्त में चन्द्रमा के समान सुन्दरी एक मनोहर रमणी उसके पास धीरे-धीरे जाती है । उस राजा त्रिशंकु की सत्यरता नामक केकयवंश पत्नी में उत्पन्न थी । उसने हरिश्चन्द्र नामक परम धार्मिक पुत्र को उत्पन्न किया । वह राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के रूप में परम प्रसिद्ध था । उसने अपने समय में राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया था, समस्त पृथ्वीमण्डल का वह एकच्छत्र सम्राट् था, ऐसा सुना जाता है ॥ ११६-११७ ॥

हरिश्चन्द्र का पुत्र परम बलवान् रोहित हुआ । रोहित का पुत्र हरित हुआ और हरित का पुत्र चंचु नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस चंचु के विजय और सुदेव नाम वाले दो पुत्र हुए । विजय सभी क्षत्रियों का विजेता था, इसी कारण से उसका नाम भी विजय था ॥ ११८-११९ ॥

विजय का पुत्र रुरुक हुआ, जो अपने समय का परम धर्मार्थवेत्ता राजा था । रुरुक का पुत्र उतक हुआ, और उसका बाहु उत्पन्न हुआ । हैहय और तालजंघ के वंशों में उत्पन्न होनेवालों ने अत्यन्त व्यसनी राजा बाहु को परास्त कर दिया । उनके साथ शक, यवन, काम्बोज, पारद और पल्हवों के वंश में उत्पन्न होने वाले भी थे । सत्ययुग का समय होने पर भी वह राजा बाहु परम धार्मिक नहीं था, उस राजा बाहु का पुत्र विष के साथ गर्भ से उत्पन्न हुआ, उसका नाम सगर पड़ा । पिता के शत्रुओं द्वारा की गयी दुरवस्था में भृगु के आश्रम में उसकी रक्षा तुर्व ने की थी ॥ १२०-१२२ ॥

भार्गव से आग्नेय अस्त्र प्राप्तकर राजा सगर ने समस्त पृथ्वी पर घूम-घूमकर हैहय और तालजंघ के वंश में उत्पन्न होनेवालों में सबका संहार कर डाला । उस महाबलवान् राजा सगर ने शकों, पल्हवों, पारदों एवं अन्य क्षत्रियों को भी अपने पूर्वजों के अधिकार एवं धर्म से वंचित कर दिया ॥ १२३-१२४ ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी ! वे राजा सगर किस प्रकार विष के साथ उत्पन्न हुए, और किस लिए उस

सूत उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृतं राज्यं पुरा किल । हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्धं समागतैः ॥ १२६ ॥
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पल्हवास्तथा । हैहयार्थं पराक्रान्ता एते पञ्च गणास्तदा ॥ १२७ ॥
हृतं राज्यं बलीयोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवैः । हृतराज्यस्तदा बाहुः संन्यस्य नु तदा नृपः ॥
वनं प्रविश्य धर्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत् ॥ १२८ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य तोयार्थं प्रस्थितो नृपः। वृद्धात्वाददुर्बलत्वाच्च अन्तरा स ममार च॥ १२९ ॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् । सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ॥ १३० ॥
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्नौ तं समरोहयत् । और्वस्तां भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्तयत्॥ १३१ ॥
तस्याश्रमे तु तं गर्भं सागरेण तदा सह । व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम धार्मिकम् ॥ १३२ ॥
और्वस्तु जातकर्मादीन्कृत्वा तस्य महात्मनः । अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ १३३ ॥
जामदग्न्यात्तदाग्नेयमसुरैरपि दुःसहम् । स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः ॥
जघान हैहयान्क्रुद्धो रुद्रः पशुगणानिव ॥ १३४ ॥

---

अच्युत ने महान् तेजस्वी शकों एवं क्षत्रियों के कुलोचित धर्मों को क्रुद्ध होकर संहार कर दिया ॥ १२५ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिगण ! ऐसी प्रसिद्धि है कि पूर्वकाल में राजा बाहु के व्यसनी होने के कारण उनका राज्य हैहय, तालजंघ एवं शकों के साथ यवन, पारद, कम्बोज और पल्हवों ने आक्रमण करके सारा राज्य छीन लिया। उस समय इन पाँचों गणों ने हैहय के लिए यह आक्रमण किया ॥ १२६-१२७ ॥

इन क्षत्रिय पुङ्गव बलवान् शत्रुओं द्वारा राज्य छीन लिये जाने पर धर्मात्मा राजा बाहु घर द्वार छोड़कर पत्नी के साथ वन को चले गये और वहाँ तपस्या करना प्रारंभ किया ॥ १२८ ॥

कुछ समय बाद एक दिन राजा जल लेने के लिए गये, और अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल होने के कारण बीच मार्ग में ही उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी यादवी नामक पत्नी, जो उस समय गर्भवती थी, अनुगमन के लिए प्रस्तुत हुई, उसके गर्भ को मारने की नीयत से सपत्नी ने उसे विष दे दिया था ॥ १३० ॥

यादवी को पति की चिता बनाकर उसने बैठा दिया और आग भी लगा दी, उसी बीच भार्गव और्व मुनि वहाँ आये और करुणावश उसे जलने से निवारित किया ॥ १३१ ॥

उन्हीं और्व ऋषि के आश्रम में यादवी ने सपत्नी के दिये गये विष के साथ महाबाहु सगर नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १३२ ॥

मुनिवर और्व ने उस महातेजस्वी सगर का जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किया और वेद शास्त्रों का सम्पूर्ण अध्ययन कराकर अस्त्र विद्या भी दी। उसी समय जमदग्नि के पुत्र और्व मुनि से सगर ने उस आग्नेयास्त्र को प्राप्त किया, जिसे बड़े-बड़े राक्षस भी सहन करने में असमर्थ थे। उसी अस्त्र बल से तथा अपने शारीरिक बल से उस परम प्रतापी राजा सगर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हैहयों का वध इस प्रकार कर डाला, जैसे रुद्र सृष्टि के अवसान में जीवसमूहों का संहार करते हैं ॥ १३३-१३४ ॥

ततः शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदांस्तथा । पह्लवांश्चैव निःशेषान्कर्तुं व्यवसितो नृपः ॥ १३५ ॥
ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना । वसिष्ठं शरणं सर्वे प्रपन्नाः शरणैषिणः ॥ १३६ ॥
वसिष्ठस्तांस्तथेत्युक्त्वा समयेन महामुनिः । सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाऽभयं तदा ॥ १३७ ॥
सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च । धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥ १३८ ॥
अर्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् । यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥ १३९ ॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पल्हवाः श्मश्रुधारिणः। निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ १४० ॥
शका यवनकाम्बोजाः पल्हवाः पारदैः सह । केलिस्पर्शा माहिषिका दार्वाश्चोलाः खसास्तथा ॥१४१॥
सर्वे ते क्षत्रियगणा धर्मस्तेषां निराकृतः । वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना ॥ १४२ ॥
स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुंधराम् । अश्वं विचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥ १४३ ॥
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे । वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ १४४ ॥
स तं देशं सुतैः सर्वैः खनयामास पार्थिवः । आसेदुश्च ततस्तस्मिंस्तदन्तस्ते महार्णवे ॥ १४५ ॥
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् । विष्णुं कपिलरूपेण हंसं नारायणं प्रभुम् ॥ १४६ ॥
तस्य चक्षुः समासाद्य तेजस्तत्प्रतिपद्यते । दग्धाः पुत्रास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥ १४७ ॥

---

हैहयों को मारने के उपरान्त राजा सगर ने शक, यवन, कम्बोज, पारद एवं पल्हवों को भी निशेष कर देने की इच्छा की । महाबलवान् एवं पराक्रमी सगर से अत्यन्त पीड़ित एवं भयभीत होकर वे सब शरण खोजते हुए, जब महर्षि वसिष्ठ के पास पहुँचे तब महामुनि ने वचन देकर उनको अभयदान दिया और राजा सगर को इस संहार कार्य से निवारित किया । राजा सगर ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का और गुरु के आदेश का विचार करके उन सबों के धर्मों को नष्ट कर दिया तथा वेश-भूषा आदि भी बदल दी ॥ १३५-१३८ ॥

उसने शकों का आधा सिर मुण्डित कराकर छोड़ दिया, यवनों के पूरे सिर को मुंडित कराकर छोड़ दिया, कम्बोजों को भी पूरा सिर मुंडित कराकर छोड़ दिया, पारदों के केवल केश छोड़ दिये मूँछ-दाढ़ी सब मुण्डित करा दिये, पल्हवों की केवल दाढ़ी रखवाकर छोड़ दिया । उस महान् बलशाली ने इस सबको वेदाध्ययन, यज्ञ, हवनादि से सर्वथा वंचित कर दिया । ये शक, यवन, कम्बोज, पह्लव, पारद, कलिस्पर्श, माहिषिक, दार्व, चोल एवं खस जातिवाले सभी पहले क्षत्रिय वर्ण के थे, इनके धर्म को उस महाबलवान् राजा ने वसिष्ठ का वचन मानकर निराकृत कर दिया ॥ १३९-१४२ ॥

इस प्रकार उस धर्मविजयी राजा ने सारी पृथ्वी जीतकर अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा ग्रहणकर अश्व को सम्पूर्ण भूमण्डल में घुमाया । घुमाते समय उसका अश्वमेध यज्ञ का वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के तटवर्ती प्रान्त में अपहृत कर लिया गया और पृथ्वी के भीतर छिपा दिया गया ॥ १४३-१४४ ॥

तदनन्तर राजा सगर ने अपने सभी पुत्रों से समुद्र के तटवर्ती समस्त प्रान्तों को खनवा डाला, खनते समय उसके पुत्रगण उस महासमुद्र के अन्तिम छोर पर पहुँच गये और वहाँ पर आदि पुरुष, हरि, कृष्ण, प्रजापति, नारायण, प्रभु, हंस आदि अनेक नामों एवं रूपों से प्रकाशित होनेवाले भगवान् विष्णु को महर्षि कपिल के वेश में

बर्हिकेतुः सकेतुश्च तथा धर्मरतस्त्रयः । शूरः पञ्चवनश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥ १४८ ॥
प्रादाच्च तस्य भगवान्हरिर्नारायणो वरान् । अक्षयत्वं स्ववंशस्य वाजिमेधशतं तथा ॥
विभुं पुत्रं समुद्रं च स्वर्गे वासं तथाऽक्षयम् ॥ १४९ ॥
स समुद्रोऽश्वमादाय ववन्दे सरितां पतिः । सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥ १५० ॥
तं चाऽश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रात्प्राप्य पार्थिवः । आजहाराश्वमेधानां शतं चैव पुनः पुनः ॥ १५१ ॥
षष्टिपुत्रंसहस्राणि दग्धान्यश्वानुसारिणाम् । तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ॥
पुत्राणां तु सहस्राणि षष्टिस्तु इति नः श्रुतम् ॥ १५२ ॥

ऋषय ऊचुः

सगरस्याऽऽत्मजा राज्ञः कथं जाता महाबलाः । विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥१५३॥

सूत उवाच

द्वे पत्न्यौ सगरस्याऽऽस्तां तपसा दग्धकिल्बिषे। ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥ १५४ ॥
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी । अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ १५५ ॥
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तपसाऽऽराधितः प्रभुः । एका जनिष्यते पुत्रं वंशकर्तारमीप्सितम् ॥
षष्टिपुत्रसहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥ १५६ ॥

---

उपस्थित देखा । चोर जानकर उनके पास, ज्योंही उनकी आँख के सामने पहुँचे त्योंही परम तेज को न सहन कर भस्म हो गये, केवल चार पुत्र शेष रह गये ॥ १४५-१४७ ॥

उनके नाम बर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरत और पंचवन थे, उस महान् ऐश्वर्यशाली राजा सगर के वंश को बढ़ानेवाले ये चार पुत्र कहे जाते हैं । भगवान् नारायण ने राजा को सुन्दर वरदान दिये । जिनसे उनको अपने वंश का अक्षयत्व, सौ अश्वमेध यज्ञों के सम्पन्न करने का सुअवसर, परम ऐश्वर्य सम्पन्न समुद्र का पुत्रत्व एवं स्वर्गलोक में अनन्त काल पर्यन्त निवास करने का वर प्राप्त हुआ ॥ १४८-१४९ ॥

समस्त सरिताओं का स्वामी समुद्र उस समय उनके समीप अश्व लेकर उपस्थित हुआ और नमस्कार किया । राजा के उसी महान् कर्म से उसे सागरत्व (सागर के पुत्रत्व) की उपाधि प्राप्त हुई । इस प्रकार समुद्र से उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व को प्राप्तकर राजा सगर ने अन्य सौ अश्वमेध यज्ञों को निर्विघ्न सम्पन्न किया । उसके उस प्रथम यज्ञ के पीछे-पीछे चलनेवाले जो साठ सहस्र पुत्र भस्म हुए थे वे सब-के-सब महाबलवान् पुत्रगण नारायण के तेज में तद्रूप होकर उनके तेज में मिल गए—ऐसा हमने सुना है ॥ १५०-१५२ ॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी राजा सगर के वे साठ सहस्र पुत्रगण, जो सब परम बलवान् एवं विजयी थे, किस प्रकार से अथवा किस विधि से उत्पन्न हुए यह बताइये ॥ १५३ ॥

सूत जी ने कहा—उस राजा सगर की दो स्त्रियाँ थीं, जिन्होंने अपनी घोर तपस्या द्वारा समस्त पापों को भस्म कर दिया था, बड़ी स्त्री विदर्भराज की कन्या केशिनी नाम से विख्यात थीं, उनकी छोटी पत्नी जो परम धर्मिष्ठ थीं, वे राजा अरिष्टनेमि की कन्या थीं, अपने रूप में सारे भूमण्डल में वे अकेली थीं ॥ १५४-१५५ ॥

मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम् । वंशस्य कारणं श्रेष्ठा जग्राह नृपसंसदि ॥ १५७ ॥
षष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा । महात्मनस्तु जग्राह सुमतिः स्वमतिर्यथा ॥ १५८ ॥
अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठं पुत्रं व्यजायत । असमञ्ज इति ख्यातं काकुत्स्थं सगरात्मजम्॥ १५९ ॥
सुमतिस्त्वपि जज्ञे वै गर्भ तुम्बं यशस्विनी । षष्टिपुत्रसहस्राणि तुम्बमध्याद् विनिःसृताः ॥ १६० ॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्नगर्भान्यदधत्ततः । धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः ॥ १६१ ॥
ततो नवसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् । कुमारास्ते महाभागाः सगरप्रीतिवर्धनाः ॥ १६२ ॥
कालेन महता चैव यौवनं प्रतिपेदिरे । षष्टिपुत्रसहस्राणि तेषामश्वानुसारिणाम् ॥ १६३ ॥
स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्रः सगरस्याऽऽत्मसंभवः । असमञ्ज इति ख्यातो बर्हिकेतुर्महाबलः ॥ १६४ ॥
पौराणामहिते युक्तः पित्रा निर्वासितः पुरा । तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥ १६५ ॥
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः । दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो भगीरथः ॥ १६६ ॥
येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानैरुपशोभिता । ईजानेन समुद्राद्वै दुहितृत्वेन कल्पिता ॥
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका जनाः ॥ १६७ ॥
भगीरथस्तु तां गङ्गामानयामास कर्मभिः । तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तमैः ॥ १६८ ॥

---

तपस्या द्वारा सन्तुष्ट किये गये महामुनि और्व ने उन्हें वरदान दिया कि इनमें से एक वंशकर्त्ता पुत्र को उत्पन्न करेगी और दूसरी साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न करेगी ॥ १५६ ॥

राजसभा में मुनि के इन दोनों वरदानों में से केशिनी ने वंशकर्त्ता एक पुत्र की प्राप्ति का वरदान माँगा, सुपर्णभगिनी दूसरी रानी सुमति ने अपने मन के अनुकूल महामुनि से साठ सहस्र पुत्रों को प्राप्त करने का वरदान माँगा । तदनुसार समय आने पर बड़ी रानी केशिनी ने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज को उत्पन्न किया, बाद में चलकर वह सगर पुत्र राजा असमञ्ज काकुत्स्थ नाम से विख्यात हुआ ॥ १५६-१५९ ॥

यशस्विनी रानी सुमति ने अपने गर्भ से एक तुम्ब उत्पन्न किया जिसके बीच से साठ सहस्र पुत्र निकले उत्पन्न होने के बाद वे गर्भ घृत से भरे हुए पात्रों में रखे गये, राजा ने उन पात्रों को साठ सहस्र धायों को पालने के लिए सौंपा । नव महीने बीत जाने पर उन पात्रों से सुखपूर्वक वे साठ सहस्र महाभाग्यशाली राजकुमार बाहर निकले, जिन्हें देखकर राजा सगर को परम सुख प्राप्त हुआ । बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर वे सब राजकुमार युवावस्था को प्राप्त हुए । प्रथम अश्वमेघ यज्ञ के अश्व के पीछे वे साठ सहस्र पुत्र गये थे ॥ १६०-१६३ ॥

राजा सगर के सबसे बड़े औरस पुत्र नरव्याघ्र असमञ्ज महाबलवान् थे, उनका दूसरा नाम बर्हिकेतु भी प्रसिद्ध था । पहले वे नगर निवासियों के अहितकर कार्यों में लगे रहते थे, इससे पिता ने उन्हें निर्वासित कर दिया था । असमञ्ज के परम बलवान् अंशुमान नामक पुत्र हुए । अंशुमान के परम धर्मात्मा पुत्र दिलीप नाम से विख्यात हुए । दिलीप से महान् तेजस्वी भगीरथ नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६४-१६६ ॥

इसी भगीरथ ने अपनी पूजा एवं क्रिया के बल से विमानों से सुशोभित, समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा को पुत्री रूप में प्राप्त किया और समुद्रपर्यन्त उसकी पावनी धारा से पृथ्वी को सुशोभित किया । पुराणों के

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह । नाभागस्तस्य दायादो नित्यं धर्मपरायणः ॥ १६९ ॥
अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् । एवं वंशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥ १७० ॥
नाभागेरम्बरीषस्य भुजाभ्यां परिपालिता । बभूव वसुधाऽत्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥ १७१ ॥
आयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् । अयुतायोस्तु दायाद ऋतुपर्णो महायशाः ॥ १७२ ॥
दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली । नलौ द्वाविति विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ॥ १७३ ॥
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः । ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सर्वकामो जनेश्वरः ॥ १७४ ॥
सुदासस्तस्य तनयो राजा हंसमुखोऽभवत् । सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥ १७५ ॥
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः। वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ॥
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकु कुलवृद्धये ॥ १७६ ॥
अश्मकस्योरकामस्तु मूलकस्तत्सुतोभवत् । अत्राप्युदाहरन्तीमं मूलकं वै नृपं प्रति ॥ १७७ ॥
स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतोऽवसत् । विवस्त्रस्त्राणमिच्छन् वै नारीकवचमीश्वरः॥ १७८ ॥

---

जाननेवाले आज भी इस श्लोक (यशोगाथा) का गान करते हैं कि 'राजा भगीरथ ने अपने कर्मों द्वारा गंगा जी को पृथ्वी पर उतारा था, राजवंशों के वृत्तान्त को जाननेवाले अर्थात् ऐतिहासिक लोग इसीलिए गंगा को भागीरथी कहते हैं। उस राजा भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम से विख्यात हुआ, उसका उत्तराधिकारी नाभाग हुआ, जो सर्वदा अपने धर्म में तत्पर रहनेवाला था ॥ १६७-१६९ ॥

नाभाग का पुत्र अम्बरीष था, और उसका पुत्र राजा सिन्धुद्वीप हुआ। पुराण कथाओं के ज्ञाता लोग इस वंश का इतिहास इसी प्रकार सुनाते हैं—ऐसा हमने भी सुना है। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा नाभाग के पुत्र अम्बरीष की भुजाओं से पाली गयी पृथ्वी तीनों तापों से सर्वदा के लिए विहीन हो गयी थी, अर्थात् उसके समय में प्रजाओं को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ, वह भी परम बलशाली राजा था। उस आयुतायु का उत्तराधिकारी महान यशस्वी राजा ऋतुपर्ण हुआ ॥ १७०-१७२ ॥

यह ऋतुपर्ण राजा नल का परम सुहृद एवं बलवान् राजा था, दिव्य अक्ष विद्या में वह परम निपुण था। पुराणों में दो नल विख्यात हैं, वे दोनों ही परम साहसी एवं वीर हैं, उनमें एक नल राजा वीरसेन के पुत्र थे, दूसरे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे। राजा ऋतुपर्ण के पुत्र राजा सर्वकाम थे, उनके पुत्र का नाम सुदास था, इस सुदास का दूसरा नाम हंसमुख भी था (अथवा उसका मुख हंस की तरह था)। उस सुदास के पुत्र राजा सौदास के नाम से कहे जाते. हैं। इनका दूसरा नाम कल्माषपाद तथा मित्रसह भी विख्यात है ॥ १७३-१७५ ॥

महान तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने राजा कल्माषपाद के क्षेत्र में (स्त्री में) इक्ष्वाकु के वंश की वृद्धि के लिए अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। अश्मक का पुत्र उरकाम हुआ, उसका पुत्र मूलक था। उस राजा मूलक के विषय में आज भी लोग यह कहते हैं कि वह राजा मूलक राम (परशुराम) के भय से स्त्रियों के बीच में निवास करता था, समर्थ होते हुए भी वह वस्त्र-विहीन होकर अपनी रक्षा के लिए स्त्रियों को कवच बनाये हुए था। अथवा पुरुषों का वेश छोड़कर स्त्रियों का वेश धारण किये हुए था ॥ १७६-१७८ ॥

मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः स्मृतः । तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा चैडिविडो बली ॥ १७९ ॥
असीत्त्वैडिविडः श्रीमान्कृतशर्मा प्रतापवान् । पुत्रो विश्वमहत्तस्य पुत्रीकस्य व्यजायत ॥ १८० ॥
दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः । येन स्वर्गादिहाऽऽगम्य मूहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥
त्रयोऽभिसंहिता लोका बुध्या सत्येन चैव हि ॥ १८१ ॥
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तमादजायत । अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ॥
राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ १८२ ॥
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः । भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ॥ १८३ ॥
माधवं लवणं हत्वा गत्वा मधुवनं च तत् । शत्रुघ्नेन पुरी तत्र मथुरा संनिवेशिता ॥ १८४ ॥
सुबाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहितावुभौ । पालयामासतुः सुतौ वैदेह्यौ मथुरां पुरीम् ॥ १८५ ॥
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्याऽऽत्मजावुभौ । हिमवत्पर्वताभ्यासे स्फीतौ जनपदौ तयोः ॥ १८६ ॥
अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी । चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्त्रा पुरी शुभा ॥ १८७ ॥
भरतस्याऽऽत्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कर एव च । गान्धारविषये सिद्धे तयोः पुर्यौ महात्मनोः ॥ १८८ ॥
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशिला पुरी । पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती ॥ १८९ ॥

---

उस राजा मूलक के पुत्र परम धर्मात्मा राजा शतरथ कहे जाते हैं । उस राजा शतरथ से परम बलवान् राजा ऐडिविड उत्पन्न हुए । वे राजा ऐडिविड परम कान्तिशाली थे । उनके पुत्र प्रतापशाली कृतशर्मा हुए, कृतशर्मा के विश्वमहत् नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७९-१८० ॥

उनके पुत्र दिलीप हुए, जो खट्वांग नाम से भी प्रसिद्ध थे । वे राजा दिलीप स्वर्गलोक से पृथ्वीलोक पर आकर दो घड़ी तक जीवित रहे । अपने सत्य, बुद्धि एवं बल से उन्होंने तीनों लोकों को पराजित कर दिया था । उन राजा खट्वांग के पुत्र दीर्घबाहु हुए, उनसे राजा रघु हुए, रघु के परम बलवान् अज उत्पन्न हुए । उन्हीं अज से इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करनेवाले परम बलशाली राजा दशरथ हुए ॥ १८१-१८२ ॥

दशरथ के पुत्र रामचन्द्र परम धर्मज्ञ थे, समस्त लोक में उनकी धर्मज्ञता विख्यात थी । राम के अतिरिक्त भरत, लक्ष्मण और महाबलवान् शत्रुघ्न नामक उनके तीन पुत्र और थे । मधु के पुत्र लवणासुर का संहार कर, और मधुवन में प्रवेशकर शत्रुघ्न ने वहीं पर मथुरा नामक पुरी की प्रतिष्ठापना की थी । विदेह की राजकुमारी से उत्पन्न होने वाले सुबाहु और शूरसेन नामक दोनों पुत्रों ने अपने पिता शत्रुघ्न के साथ मथुरापुरी का शासन एवं वहाँ की प्रजाओं का पालन-पोषण किया था । लक्ष्मण के अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र थे, उन दोनों के राज्य हिमवान् पर्वत के सीमावर्ती प्रान्तों में विस्तृत थे ॥ १८३-१८६ ॥

बड़े पुत्र अङ्गद की राजधानी कारपथ देश में अंगदीया नाम से विख्यात पुरी थी । मल्ल (बलवान्) चन्द्रकेतु की चन्द्रवक्त्रा नामक परम शोभायमान पुरी थी । भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर दोनों बड़े वीर थे । उन दोनों महात्मा बलशालियों की राजधानी गान्धार नामक सिद्ध देश में थी । तक्ष की विख्यात व रमणीय तक्षशिला नामक पुरी थी । वीरवर पुष्कर की भी पुष्करावती नामक राजधानी थी ॥ १८७-१८९ ॥

**गाथां चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः। रामे निबद्धास्तत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य धीमतः ॥ १९० ॥**
**श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः। आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥ १९१ ॥**
**दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् । ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महास्वनः ॥ १९२ ॥**
**अविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति । जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार सः ॥ १९३ ॥**
**तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्यं मनुजर्षभः । सीतायाः पदमन्विच्छन्निजघान महायशाः ॥ १९४ ॥**
**सत्त्ववान् गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अति सूर्यं च वह्निं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥ १९५ ॥**
**एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः ॥ १९६ ॥**
**श्रीरामस्याऽऽत्मजो जज्ञे कुश इत्यभिधीयते । लवश्चान्यो महावीर्यस्तयोर्देशौ निबोधत ॥ १९७ ॥**
**कुशस्य कोशला राज्यं पुरी वाऽपि कुशस्थली । रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यपर्वतसानुषु ॥ १९८ ॥**
**उत्तराकोशले राज्यं लवस्य च महात्मनः । श्रावस्ती लोकविख्याता कुशवंशं निबोधत ॥ १९९ ॥**

---

पुराणों के जानने वाले लोग परम बुद्धिमान् राम के विषय में उनके माहात्म्य को प्रकट करने वाली तत्त्वपूर्ण यशोगाथाओं का गान करते थे ॥ १९० ॥

वे ऐसा कहते हैं कि राम श्यामलवर्ण के, लाल नेत्रोंवाले, तेज से देदीप्यमान मुखमण्डल वाले एवं मितभाषी युवक थे उनका मुख परम सुन्दर था, उनकी दोनों बाहुएँ घुटनों को छूनेवाली थीं, सिंह के समान उनका विशाल कन्धा था, उनके भुजदण्ड विशाल थे। राम ने दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया था। उनके राज्य में चारों ओर ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद की सुन्दर मनोहारिणी ध्वनि सुनायी पड़ती थी। उनके धनुष की प्रत्यंचा की ध्वनि अत्यन्त कठोर थी ॥ १९१-१९२ ॥

उनके राष्ट्र में किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं था, लोगों में खूब दान करो, खूब खाओ-पीओ की धूम मची थी। उस राम ने जनस्थान में निवासकर देवताओं का एक परम आवश्यक कार्य सम्पन्न किया था। उन मनुज शिरोमणि महान् यशस्वी राम ने पुलस्त्य मुनि के वंश में उत्पन्न होनेवाले, पापात्मा रावण का संहार सीता को खोजते समय किया था ॥ १९३-१९४ ॥

दशरथ के पुत्र राम परम बलशाली थे और सभी गुणों से सम्पन्न थे। वे अपने अनुपम तेज से देदीप्यमान थे। सूर्य एवं अग्नि के तेज को भी उन्होंने अपने तेज से अतिक्रान्त कर दिया था। उन (दाशरथी राम) ने जो परम प्रभावशाली एवं महाबाहु इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करने वाले थे, परिवार समेत रावण का विनाश कर दिया और इसी प्रकार स्वर्ग को चले गये ॥ १९५-१९६ ॥

श्रीराम के पुत्र कुश नाम से विख्यात हुए। लव नामक महाबलवान् एक पुत्र और था। उन दोनों के देशों का विवरण सुनिये। कुश का राज्य कोशला नाम से विख्यात था, उसकी राजधानी कुशस्थली नामक पुरी थी, कुश ने विन्ध्याचल के मनोहर पर्वत शिखर पर उसकी स्थापना की थी ॥ १९७-१९८ ॥

महाबलवान् लव का राज्य उत्तर कोशला के नाम से विख्यात था। उसकी परम विख्यात श्रावस्ती पुरी राजधानी थी। अब कुश के वंश को सुनिये ॥ १९७-१९९ ॥

कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथिः सुप्रियातिथिः। अतिथेरपि विख्यातो निषधो नाम पार्थिवः ॥ २०० ॥
निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु । नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥ २०१ ॥
क्षेमधन्वसुतो राजा देवानीकः प्रतापवान् । आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥ २०२ ॥
अहीनगोस्तु दायादः पारियात्रो महायशाः। दलस्तस्याऽऽत्मजश्चापि तस्माज्जज्ञे बलो नृपः ॥ २०३ ॥
औङ्को नाम स धर्मात्मा बलपुत्रो बभूव ह । वज्रनाभसुतस्तस्य शङ्खनस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ २०४ ॥
शङ्खनस्य सुतो विद्वान्ध्युषिताश्व इति श्रुतः । ध्युषिताश्वसुतश्चापि राजा विश्वसहः किल ॥ २०५ ॥
हिरण्यनाभकौशल्यो वशिष्ठस्तत्सुतोऽभवत् । पौत्रस्य जैमिनेः शिष्यः स्मृतः सर्वेषु शर्मसु ॥ २०६ ॥
शतानि संहितानां तु पञ्च योऽधीतवांस्ततः । तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ॥ २०७ ॥
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान्ध्रुवसंधिश्च तत्सुतः । सुदर्शनस्तस्य सुतो अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥ २०८ ॥
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य मनुः स्मृतः। मनुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः ॥
एकोनविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्तकः प्रभुः ॥ २०९ ॥
प्रसुश्रुतो मनोः पुत्रः सुसंधिस्तस्य चाऽऽत्मजः। सुसंधेश्च तथा मर्षः सहस्वान्नाम नामतः ॥ २१० ॥

---

कुश के पुत्र परम धर्मात्मा अतिथि थे, वे अतिथियों का विशेष सम्मान करते थे । अतिथि के पुत्र परम विख्यात राजा निषध हुए । निषेध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुए । नभ के पुत्र पुण्डरीक हुए, पुण्डरीक के बाद उनके पुत्र क्षेमधन्वा का नाम कहा गया है ॥ २००-२०१ ॥

क्षेमधन्वा के पुत्र परम बलवान् देवानीक नामक राजा हुए । देवानीक के पुत्र परम प्रभावशाली अहीनगु नामक राजा हुए । अहीनगु के उत्तराधिकारी उनके पुत्र महान् यशस्वी राजा पारियात्र हुए । उनके पुत्र दल और दल के पुत्र राजा बल उत्पन्न हुए । बल के पुत्र परम धर्मात्मा राजा औङ्क हुए और उन औङ्क के पुत्र वज्रनाभ हुए जिनके पुत्र शङ्खन हुए ॥ २०२-२०४ ॥

शङ्खन के परम विद्वान् ध्युषिताश्व नामक पुत्र कहे जाते हैं । ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा ध्युषिताश्व के पुत्र राजा विश्वसह हुए । राजा विश्वसह के पुत्र हिरण्यनाभ कौशल्य के नाम से विख्यात हुए । उनके पुत्र वशिष्ठ कहे गए हैं । उनको जैमिनि के पौत्र के शिष्य रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी । सभी मांगलिक कार्यों में उनकी सिद्धहस्तता प्रसिद्ध थी ॥ २००-२०६ ॥

इन्होंने पाँच सौ संहिताओं का विधिवत् अध्ययन किया था, परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने इन्हीं से योग की साङ्गोपाङ्ग शिक्षा प्राप्त की थी, उनके पुत्र परम विद्वान् पुष्य हुए । पुष्य के पुत्र ध्रुवसन्धि नाम से विख्यात हुए, उनके पुत्र सुदर्शन हुए, सुदर्शन से अग्निवर्ण की उत्पत्ति हुई ॥ २०७-२०८ ॥

अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्र नाम से विख्यात हुए, शीघ्रक के पुत्र मनु कहे जाते हैं । मनु योग मार्ग का अवलम्ब करके कलाप नामक ग्राम में निवास करते थे, परम ऐश्वर्यशाली ये मनु उन्नीसवें युग में क्षत्रिय धर्म के पुनः प्रवर्तक रूप में प्रसिद्ध हुए ॥ २०९ ॥

आसीत्सहस्वतः पुत्रो राजा विश्रुतवानिति । तस्याऽऽसीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥ २११ ॥
एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः। वंशे प्रधाना ये तेऽस्मिन्प्राधान्येन तु कीर्तिताः ॥ २१२ ॥
पठन्सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः । प्रजावानेति सायुज्यं मनोर्वैवस्वतस्य सः ॥ २१३ ॥
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च । विपाप्मा विरजश्चैव आयुष्मान्भवतेऽच्युतः ॥ २१४ ॥

**॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे वैवस्वतमनुवंशवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥**

* * *

---

मनु के पुत्र प्रसुश्रुत थे । उनके पुत्र सुसंधि हुए । सुसंधि के मर्ष नामक पुत्र हुए, जिनका दूसरा नाम सहस्वान् भी था ॥ ११० ॥

सहस्वान् के पुत्र राजा विश्रुतवान् के नाम से प्रसिद्ध हुए । उन राजा विश्रुतवान् के पुत्र राजा बृहद्बल हुए । इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होनेवाले प्रायः यही राजागण स्मरण किये जाते हैं, जो इस वंश के प्रमुख राजा थे, उनका वर्णन प्रधान रूप से कह दिया गया है ॥ २११-११२ ॥

अदिति के पुत्र विवस्वान् की इस सृष्टि के विवरण को जो मनुष्य भलीभाँति पाठ करता है, वह सन्तति वाला होता है तथा विवस्वान् के पुत्र मनु का सान्निध्य प्राप्त करता है । प्रजाओं की पुष्टि देने वाले श्राद्धों में पूजनीय पितरगण एवं देवगण का यह वृत्तान्त जो पढ़ता है, वह समस्त पापों से रहित, रजोगुण से रहित, अविनाशशील एवं दीर्घायु वाला होता है ॥ २१३-२१४ ॥

**श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में वैवस्वतमनुवंशवर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय** (अट्ठासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २६ ॥**

* * *